Introduction

प्राक्कथन :

काव्य या साहित्य के शब्द विशेष दृष्टि-स्पर्शित लोकोत्तर-आह्लाद जनक ज्ञान गोचरत्व हेतु होते हैं। इस अद्भुत विषय के संदर्भ में ध्वन्यालोककार का कथन है-

''दृष्टपूर्वा अपिह्यार्था : काव्ये रस परिग्रहात।
सर्वे नवा इवाभान्ति मधुमास इव द्रूमा : ॥''

अर्थात् वृक्ष पुराने होने पर भी चैत्र के महीने में, उसके इन्द्रजाली प्रभाव में नूतन वृक्षों में परिवर्तित होते हैं, वैसे ही शब्द और अर्थ सर्वसामान्य और सबके द्वारा जाने-माने होने पर भी काव्य-प्रक्रिया से गुजरकर नव्यता प्राप्त करते हैं। महाकवि माघ ''शिशुपाललवध'' काव्य में रेवतकाद्रि का वर्णन करते हुए नव्यता का यही अर्थ ध्वनित करते हैं-

''दृष्टोपि शैलस्समुहुर्मुरारेपूर्ववत् विस्मय माततान्।
क्षमे क्षमे यन्नवतामुपैति तदेवरूपं रमणीयताया : ॥''

संसार में सभी चीजें पुरानी हो जाती हैं। काव्य या साहित्य प्राचीन होते हुए भी सदैव नव्यता धारण किए हुए रहता है। काव्यदेवी सरस्वती के कौमार्य की कल्पना कदाचित यहाँ से स्फुरित हुई है। इसी नव्यता की बात मायकावस्की भी कहते हैं - ''New-ness-newness of material and of method is essential for every poetic eomposition.'' यह नव्यता ही उसे दिव्यता, लोकोत्तरता, आसाधारणता, आधुनिकता प्रदान करता है। इस प्रकार का काव्य सदा आधुनिक होता है। इसी अर्थ सें व्यास, वाल्मीकि, माघ, कालिदास, भवूभति आधुनिक हैं और इसी अर्थ में सूर-तुलसी-कबीर।

साधाराण व्यक्ति, या कवि भी अपने काव्येतर व्यवहार में, नित्यप्रति की भाषा को साधारण प्रयोग के लिए प्रयुक्त करता है, अतः शब्द की ऊमरी तह का ही, अमिधार्थ का ही, उपयोग हो पाता है; जबकि कवि उसी भाषा का प्रयोग असाधारण अभिव्यक्ति के लिए करता है। अतः भाषा चाहे वही क्यों न हो, प्रयोग और प्रयोजन भेद से, सामान्य भाषा काव्यभाषा बन जाती है। इसीलिए कवि को शब्द-ब्रह्म का उपासक कहा है। जिस प्रकार ब्रह्मा या ईश्वर या सर्जनहार एक ही आत्मा को भिन्न-भिन्न स्वरूपों में प्रस्तुत करता है, ठीक उसी प्रकार प्रजापति कवि एक ही शब्द को अपने मनोनीत कवि-

कर्म से भिन्न-भिन्न अर्थ प्रदान करता है। तभी तो देव कहते हैं- ''शब्द जीव तिहि अरथ मन''। मन बदलता है। अर्थ भी बदलता है। ''निद्रा शब्द है, ''बल'' भी एक शब्द है। किन्तु ''निद्राबल पराजितः'' (वाल्मीकि) यह कवि-प्रयोग है। शब्द तो पत्थर है। उसमें प्राणों की प्रतिष्ठा कवि अपनी काव्य-श्रद्धा से करता है।''

साहित्य या काव्य की इस नित्य-नवीन अपूर्वता के कारण शुरू से ही उसके प्रति मेरा लगाव रहा है। हाईस्कूल के दिनों में दूसरे विषय में परीक्षार्थी बनकर पढ़ती थी, साहित्य विद्यार्थी बनकर पढ़ती थी। कविता, कहानी, निबंध पढ़ने का आनंद कुछ और ही था। सब हेतुक था, यही अहेतुक होता था। बाकी सबमें ''छबछबियाँ'' करती थी, यहीं आकर डूबती थी। अब समझने लगी हूँ कि इस डूबने में भी उबरना था। अतः एस.एस.सी के पश्चात कला संकाय में आयी। हिन्दी साहित्य लिया। डा. रमणभाई तलाटी, झा साहब, गोस्वामी साहब, शर्मा साहब, देसाई साहब जैसे गुरूजनों से पढ़ना-लिखना-गुनना सीखा। एम.ए. में मेरा विशेष-पत्र ''उपन्यास'' था। ''रंगभूति'', ''त्यागपत्र'', ''चारू चन्द्रलेख'', ''राग दरबारी'', ''पचपन खंभे लाल दीवारें'', ''इमरतिया ''प्रभृति उपन्यास पढ़ते हुए; मेरा मन बनता गया कि यदि शोध करने का अवसर मिला तो में इसी काव्यरूप को लेकर विशेष अध्ययन-अनुशीलन करूँगी।

''उपन्यास'' का प्रश्नपत्र हमें डा. पारूकान्त देसाई पढ़ाते थे, अतः एम.ए. के उपरांत मैंने उनके सामने पी-एच.डी. करने का प्रस्ताव रखा। उन्होंने कहा कि यदि तुम मेरे अन्तर्गत काम करना चाहती हो तो प्रतीक्षा करना पड़ेगा। मैं प्रतीक्षा के लिए तैयार थी। इस बीच उन्होंने मुझे उपन्यास-विषयक कुछ पुस्तकें पढ़ने के लिए कहा। सूची तैयार हुई और मैं पढ़ने लग गई।

''हिन्दी उपन्यास'' सं. डा.सुषमा प्रियदर्शिनी, ''हिन्दी उपन्यास'' सं. डा. भीष्म साहनी, ''हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन''डा. एस.एन. गणेशन, ''हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव''डा. भारतभूषण अग्रवाल, ''हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना''डा. कुंवरपाल सिंह, ''साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास'' तथा ''आधुनिक लेखिकाओं के नगरीय परिवेश के उपन्यास''-डा. पारूकान्त देसाई जैसे हिन्दी औपन्यासिक आलोचना के ग्रन्थ तथा ''द क्राफ्ट आफ फिक्शन'' - पर्सील्युबाक, ''द राइज़ आफ द नोवेल''- इवान वाट, ''द साकोलोजिकल नोवेल''- लियान एडले, ''द नोवेल

एण्ड द पिपुल''- राल्फ फाक्स, ''आस्पेक्ट्स आफ द नोवेल''- ई.एम.फारर्स्टर प्रभृति अंग्रेजी के औपन्यासिक आलोचना के ग्रन्थों का अवलोकन किया।

तत्पश्चात् शोध-प्रविधि के संदर्भ में ''हिन्दी अनुसंधान : स्वरूप और विकास'' (डा.भ.ह.राजूरकर), ''शोध और सिद्धान्त'' (डा. नगेन्द्र), ''महानिबंधनु मालखुं'' (गुजराती),''नवीन शोध-विज्ञान''(डा.तिलकसिंह) आदि ग्रंथों को अध्ययन किया और यह सब करते हुए देसाई साहब मुझे बराबर बताते गए कि पाद टिप्पणी क्या होती है, उसे दर्ज करने की क्या प्रविधि है, सन्दर्भानुक्रम तथा संदर्भिका (Pribliography) तैयार करने की वैज्ञानिक पद्धति क्या है और शोध-प्रबंध में किन-किन तत्वों का सविशेष महत्व है। एक स्वतंत्र आलोचनात्मक लेख या निबंध तथा शोध-लेख या निबंध में क्या अन्तर है, उसका प्रबोधन भी यहाँ हुआ। इस प्रकार लगभग साल सवा बाद निम्न लिखित विषय को लेकर मेरा पी-एच.डी. का पंजीकरण हुआ-, ''हिन्दी के स्वात्तंत्र्योत्तर महानगरीय परिवेश के उपन्यास : एक अनुशीलन''।

अध्ययन की सुविधा तथा प्रबंध की सुनियोजना हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध को निम्नलिखित सात अध्यायों में विभक्त करने की योजना है : -

(१) प्रथम अध्याय : विषयप्रवेश

(२) द्वितीय अध्याय : महानगरीय उपन्यासों का आलोचनात्मक परिचय

(३) तृतीय अध्याय : महानगरीय परिवेश - दाम्पत्य-जीवन की समस्याएँ

(४) चतुर्थ अध्याय : महानगरीय परिवेश में कामकाजी महिलाओं की समस्याएँ

(५) पंचम अध्याय : महानगरीय परिवेश और मानसिक दबाव

(६) षष्ठ अध्याय : महानगरीय परिवेश और अजनबीपन की भावना

(७) सप्तम अध्यय : उपसंहार

प्रथम अध्याय ''विषयप्रवेश'' में विषयप्रवर्तन को प्रस्तुत करते हुए उपन्यास की यथार्थधर्मिता को चिह्नित किया गया है। अपने यथार्थधर्मी आग्रह के कारण उपन्यास समाज की सामाजिक, राजीतिक , धार्मिक, आर्थिक गतिविधियों का ऐना बन जाता है और इस प्रकार वह जाने-अनजाने समाजशास्त्र के अध्ययन का एक महत्वपूर्ण स्रोत बन जाता है। तभी तो किसी बाल्जाक, गोर्की, चेखोव, टेगोर, प्रेमचन्द, शरत् से तत्कालीन समाज का जो परिबोध सम्प्राप्त होता है वह किसी समाजशास्त्री या इतिहासविद से अधिक और अनूठा होता है। यहाँ पर योरोप तथा भारत में उपन्यास के स्वरूप का जो

क्रमिक विकास हुआ है उसे भी रेखांकित करने का उपक्रम रहा है। हिन्दी के प्रथम उपन्यास पर अनुसंधानपरक दृष्टिपात करते हुए प्रेमचन्द पूर्वकाल से लेकर प्रेमचन्दोत्तर काल, विशेषतः स्वातंत्र्योत्तरकाल के उपन्यासों की पड़ताल करते हुए महानगरीय जीवन के नाना आयामों तथा अभिलक्षणों को विश्लेषित किया गया है।

द्वितीय अध्याय में ''वे दिन'',''अंधेरे बन्द कमरे'',''तीसरा आदमी'', ''मछली मरी हुई'',''टेराकोटा'',''रेखा'',''छोटे-छोटे पक्षी'',''रूकोगी नहीं राधिका'',''अनारो'',''मुर्दाघर'',''किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई'',''बोरीवली से बोरीबन्दर तक'',''प्रेम अपवित्र नदी'',''महानगर की मीता'',''पतझड़ की आवाजें'',''बंटता हुआ आदमी'',''आपका बण्टी'',''चित्तकोबरा'',''उसके हिस्से की धूप'',''दिनांत'',''तत्सम'',''कोहरे'',''छाया मत छूना मन'',''कृष्णकली'', ''नावें'',''सीढ़ियाँ'' प्रभृति २५-३० महानगरीय परिवेश से संपृक्त उपन्यासों की महानगरीय जीवन-पद्धति, महानगरीय जीवन-मूल्य तथा महानगरीय अभिलक्षणों के परिप्रेक्ष्य में विवेचना की गई है। इनके अतिरिक्त अन्य कुछेक महानगरीय परिवेश से संपृक्त उपन्यासों का उल्लेख किया गया हैं जिनकी चर्चा परवर्ती अध्यायों में किस न किसी संदर्भ में हुई है।

तृतीय अध्याय से लेकर षष्ठ अध्याय तक में महानगरीय जीवन के विभिन्न पक्षों और आयामों को महानगरीय उपन्यासों के परिप्रेक्ष्य में उकेरने का यत्न किया गया है। तदनुसार तृतीय अध्याय में दाम्पत्य-जीवन की समस्याओं को विश्लेषित करने का प्रयत्न हुआ है। दाम्पत्य-जीवन की ये समस्याएँ त्रिस्तरीय है। निम्नवर्ग की समस्याएँ, मध्यवित्त परिवार की समस्याएँ, उच्चवर्ग की समस्याएँ दाम्पत्य-जीवन को अलग-अलग ढंग से प्रभावित करती हैं। महानगरीय जीवन में जिस प्रकार की जीवन-पद्धति दृष्टिगत होती है, उसमें प्रायः जाने-अनजाने तीसरे व्यक्ति का प्रवेश अनिवार्य-सा हो गया है और उसके कारण दंपतियों का जीवन खंडित हो रहा है। इन सब कारणों की यहाँ वैज्ञानिक पड़ताल हुई है।

चतुर्थ अध्याय में कामकाजी महिलाओं के परिप्रेक्ष्य में महानगरीय-जीवन की छानबीन का प्रयास किया गया है। नारीशिक्षा के प्रचार-प्रसार तथा आर्थिक समस्याओं के कारण महानगरीय जीवन में कामकाजी महिला का एक अलग वर्ग विकसित हुआ है। यह भी त्रिस्तरीय है। पश्चिम में जहाँ स्त्री-पुरूष दोनों काम करते हैं, वहाँ वे प्रायः

पारस्परिक समझौते से काम लेते हैं और घर-गृहस्थी के काम में एक-दूसरे का हाथ बंटाते हैं। महानगरीय जीवन में यह आयाम शनैः शनैः विकसित तो हो रहा है, लेकिन कहीं-कहीं अभी भी मध्यकालीन सामंतीय पुरूष अकड़ बनी हुई है, जिसके रहते कामकाजी महिलाओं पर दोहरी मार पड़ रही है। दूसरे पुरूष मनोवृत्ति में भी कोई खास गुणात्मक परिवर्तन लक्षित नहीं हो रहा है, अतः स्त्री जहाँ किसी पुरूष के वर्चस्व में काम कर रही है, वहाँ उसे कई बार लैंगिक-शोषण का अनुभव भी होता है। इस कारण से भी दाम्पत्य जीवन में दरारें पड़ रही हैं। प्रस्तुत अध्याय में इन तथ्यों को लेकर विचार-विमर्श हुआ है।

महानगरीय-जीवन अनेक प्रकार के मानसिक दबावों से ग्रस्त है। अतः यहां भी पारिवारिक-आर्थिक समस्याएँ तो हैं ही, किन्तु इनके अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक समस्याओं की भरमार यहां मिलती है। यंत्र के साथ मनुष्य यंत्र-सा हो गया है। मनुष्य ''रोबोट'' हेाता जा रहा है। संवेदनाएँ भोंथरी हो रही हैं। पारिवारिक स्नेह का सेाता सूखता जा रहा है। प्रेम, सौहार्द और सच्ची दोस्ती के अभाव में मनुष्य घुंट रहा है। वायु-प्रदूषण तथा ध्वनि-प्रदूषण उसे विक्षिप्त बना रहा है। इन सबके कारण उसमें एक प्रकार का अकेलेपन का, अजनबीपन का, एलिनियेशन का भाव गहरा रहा है। पंचम तथा षष्ठ अध्यायों में इन मुद्दों को विश्लेषित किया गया है।

अंतिम अध्याय ''उपसंहार'' का है। यह अध्याय शोध-प्रबंध में सर्वाधिक संक्षिप्त होता है, किन्तु उसका महत्व अपरिहार्य है। रीढ़ की हड्डी के मानिंद होता है वह। शोध-प्रबंध के निष्कर्षों का तारतम्य, उसकी उपलब्धियों का संकेत तथा भविष्य में इस दिशा में क्या काम हो सकता है, उसका संक्षिप्त संकेत यहां देखा जा सकता है।

प्रत्येक अध्याय के अन्त में अध्याय के समग्रावलोकन से आवश्यक निष्कर्ष दिए गए है। तत्पश्चात् नियमतः संदर्भानुक्रम दिया गया है। प्रबंध के अन्त में ''संदर्भिका'' (Bibliography) अकारादि क्रम से प्रस्तुत की जायेगी।

यह कार्य संपन्न हो सका है। उसमें अनेक महानुभावों का प्रत्यक्ष-परोक्ष योगदान है। उन सबके प्रति में श्रद्धावनत हूँ। प्रबंध में जिन विद्वानों के ग्रन्थों या लेखों से मैंने सहायता ली है, उन सबके प्रति मैं अपना हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ।

इस शोध-कार्य हेतु मुझे म.स. यूनिवर्सिटी की रीसर्च फेलोशीप सम्प्राप्त हुई है, एतदर्थ मैं विश्वविद्यालय के पदाधिकारियों की अत्यंत ऋणी हूँ और उनके प्रति धन्यवाद

ज्ञापित करती हूँ। इनके अतिरिक्त श्रीमती जयदेवी भट्ट, सुश्री अर्चना तोमर, डा.एस.कुमार तथा डा. रमणभाई एन.तलाटी साहब से मुझे निरंतर प्रोत्साहन मिलता रहा है, अतः इन सबकी मैं आभारी हूँ।

यह कार्य मैंने हिन्दी विभाग के अन्तर्गत किया है। विभाग के प्रवर्तमान प्राध्यापकों में से कई वरिष्ठ प्राध्यापक मेरे बी.ए., एम.ए. के गुरू रहे हैं, जिनमें प्रोफेसर अक्षयकुमार गोस्वामी, वरिष्ठ रीडर डा.(कु) प्रेमलता बापना, डा. भगवानदास कहार, पाठ्यक्रम समिति की अध्यक्षा तथा वरिष्ठ रीडर डा.अनुराधा दलाल, पादरा कालेज के भूतपूर्व आचार्य डा. वामन अहिरे, सद्यनिवृत्त डा. पी.एन. झा साहब प्रभृति का मैं विशेष उल्लेख करना चाहूँगी। इन सबके प्रति मैं अपनी श्रद्धा व्यक्त करती हूँ और कामना करती हूँ कि इनके आशीर्वाद सदैव मुझे मिलते रहेंगे।

भूतपूर्व अध्यक्ष तथा प्रोफेसर डा. मदनगोपाल गुप्त मेरे गुरूओं के भी गुरू रहे हैं। अनेक अवसरों पर उनके बहुमूल्य सुझाव मुझे मिले हैं अतः उनके प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ। इनके अतिरिक्त भूतपूर्व अध्यक्षों में डा. रमणलाल पाठक तथा प्रोफेसर डा. दयाशंकर शुक्ल के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ।

इस समग्र कार्य में मुझे सदैव अपने माता-पिता एवं गुरू बाबा परसराम से प्रेरणा व सहयोग मिलता रहा, जिनके अभाव में मेरा पी-एच.डी. करना असंभव होता, अतः उनके प्रति श्रद्धा-भक्ति व्यक्त न करना मेरी कृतघ्नता होगी।

अंततः इस समग्र शोध-प्रविधि में जो सदैव मेरे साथ रहे हैं और जिनके मार्गदर्शन के अभाव में यह कार्य संपन्न न होता ऐसे मेरे परम आदरणीय गुरू तथा वर्तमान विभागाध्यक्ष एवं प्रोफेसर डा. पारूकान्त देसाई के प्रति मैं अपनी श्रद्धा और भक्ति ज्ञापित करती हूँ। वे मेरे पितातुल्य हैं और उनसे सदैव मुझे पुत्रीसदृश्य स्नेह मिलता रहा है। उनकी ज्ञान-निष्ठा तथा पूर्णता (Perfectness) का आग्रह मेरे जीवन-पथ को सदैव आलोकित करते रहेंगे।

पी. एच.डी. का कार्य आलोचना के पथ पर प्रथम और प्राथमिक पड़ाव होता है। ''सितारों के आगे जहाँ और भी है'' का अहसास हमें यहाँ होने लगता है। आंखें कुछ-कुछ खुलने लगती हैं। कुछ-कुछ दृष्टिगोचर और चिंतनगोचर होने लगता है। यह साहित्यानुशीलन की शुरूआत है, प्रारंभ है। मैं परम पिता ईश्वर से प्रार्थित हूँ कि मेरी यह ज्ञान-यात्रा यहाँ रूक न जाए, बल्कि मैं निरंतर अग्रसरित होती रहूँ। माता-

+

पिता के तथा गुरूजनों के आशीर्वाद मुझे ज्ञानालोकित करते रहें यह हमेशा मेरी कामना रहेगी। पूर्णता का हम चाहे जितना आग्रह रखें, फिर भी कुछ-न-कुछ त्रुटियाँ तो रह ही जाती हैं, क्योंकि यह मानव-यत्न है। अतः अपनी त्रुटियों के लिए मैं सुज्ञजनों के सम्मुख, क्षमाप्रार्थी हूँ। मेरा यह कार्य यदि भविष्यत् अध्येताओं के पथ के कंटकों को दूर करने में तनिक भी सहायक हुआ तो मैं अपने इस सारस्वत-श्रम को सार्थक समझूँगी।

अंतः में केरल के कवि आनंद शंकर माधवन के निम्नलिखित काव्य-शब्दों के साथ विरमती हूँ : --

''मेरे सवालों का जवाब कोई नहीं दे रहा है
न सूरज न पृथ्वी न आकाश
तभी तो खोज रहा हूँ आदि सूत्र को ही
कि जान सकूं क्या है गंगा का प्यार।''

दिनांक : २८-८-२००२

[redacted]

वडोदरा

विनीत,

(कु. सरला पाहुजा)